इकाई 8 वैदिक काल-I*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 स्रोत

8.2.1 साहित्यिक स्रोत

8.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य

8.3 आर्यों का आक्रमण : कल्पित या वास्तविक?

8.4 अर्थव्यवस्था

8.5 समाज

8.6 राजनैतिक व्यवस्था

8.7 धर्म

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.11 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- उन अनेक स्रोतों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, जिनसे हम प्रारंभिक वैदिक काल के विषय में जान सकते हैं;
- इन स्रोतों के माध्यम से इन्डो-आर्यों के व्यापक स्तर पर स्थानांतरण के सिद्धांत का परीक्षण कर सकेंगे; और
- प्रारम्भिक वैदिक काल की अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति एवं धर्म की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पहले की इकाइयों में आपने देखा कि लगभग 2000-1000 बी.सी.ई में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से असमान विकास वाली सभ्यताएँ पायी गई थीं। ये सभ्यताएँ अनिवार्यतः कृषि-पशुपालन पर आधारित थीं और चूंकि इन सभ्यताओं ने सिवाय हड़प्पा सभ्यता के कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़े हैं, अतः इनके बारे में केवल पुरातात्विक अवशेषों से ही जानकारी मिलती है। इस और अगली इकाई में हम धार्मिक अभिलेखों के उस विशाल भण्डार का अवलोकन करेंगे, जिसे भारत का प्राचीनतम् साहित्यिक प्रमाण माना जाता है। इस प्रमाण की पुष्टि हम पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा यथासम्भव करेंगे। *ऋग्वेद* को प्राप्य मंत्रों का प्राचीनतम संग्रह माना जाता है अतः हम पहले *ऋग्वेद* का ही अध्ययन करेंगे ताकि आरंभिक

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-3 से ली गई है।

वैदिक काल के विषय में जानकारी मिले। इसके बाद अन्य *वेदों* और उनसे सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन के दो लाभ हैं।

पहला, आर्यों को *वेदों* का रचयिता माना जाता है और साथ ही यह बहुत समय तक समझा गया कि भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृति के विकास में आर्यों की प्रमुख भूमिका रही। *ऋग्वेद* की सामग्री के सूक्ष्म परीक्षण से यह नहीं लगता कि उस समय की भौतिक सभ्यता बहुत विकसित थी। बल्कि इसके विपरीत भारतीय सभ्यता की तमाम विशिष्ट भौतिक विशेषताएँ ऐसी हैं जो भारत के विभिन्न भागों में पायी गयी ऐसी पुरातात्विक संस्कृतियों में मौजूद थीं जिनका वैदिक काल से कोई संबंध नहीं था। दूसरा, *ऋग्वेद* और उसके बाद के *वेदों* और सम्बद्ध साहित्य से प्राप्त सामग्री की तुलना करने से यह पता चलता है कि वैदिक समाज के अंदर भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा सुनिश्चित सांस्कृतिक ढाँचा नहीं था जिसे वैदिक संस्कृति या आर्य संस्कृति कहा जा सके।

ऋग्वेद के प्रमाण सप्त सिन्धु अर्थात् सात नदियों की भूमि वाले भौगोलिक क्षेत्र से सम्बद्ध है। यह क्षेत्र पंजाब और निकटवर्ती हरियाणा का है। किन्तु *ऋग्वेद* के भूगोल में गोमती के मैदान, दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान और दक्षिणी जम्मू कश्मीर भी सम्मिलित हैं।

प्रारंभिक व्याख्याओं के अनुसार, इंडो-आर्यों के स्थानांतरण का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित हैं कि वे पश्चिम एशिया से भारतीय उप-महाद्वीप में आये। ये प्रवासी *वेदों* के रचयिता माने जाते हैं इसलिए इनको वैदिक जन कहा गया है। इस ऐतिहासिक व्याख्या के अनुसार, आर्य कई झुण्डों या चरणों में भारत आये।

आर्यों को एक भाषाई समूह जो कि इंडो यूरोपीय[1] भाषाओं को बोलने वाला था, समझा गया है। परम्परागत इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा उनको गैर आर्य हड़प्पावासियों से भिन्न प्रकार का माना गया है।

तथापि प्रारम्भिक वैदिक समाज की टीका करने के लिए यह देखना लाभदायक होगा कि, साहित्यिक रचनाओं और पुरातात्विक साक्ष्यों में पूरकता है या नहीं। यदि ये दोनों प्रकार के स्रोत एक ही काल और क्षेत्र से सम्बद्ध हों तो इन्हें मिला कर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी और विचार मिल सकते हैं। आइए, हम इन स्रोतों की चर्चा करें।

8.2 स्रोत

प्रारम्भिक वैदिक समाज के अध्ययन के लिए मुख्यतः हमारे पास दो प्रकार के स्रोत हैं – साहित्यिक तथा पुरातात्विक। आइए, पहले हम साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन करें।

8.2.1 साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत के रूप में हमारे पास चार वैदिक ग्रंथ हैं :

- *ऋग्वेद,*
- *सामवेद,*
- *यजुर्वेद,* और
- *अथर्ववेद*।

[1] 'इंडो-यूरोपियन' शब्द प्राचीनतम् भाषाओं के समान मूल भाषाई परिवार को दर्शाती है। संस्कृत, ईरानी, लैटिन, ग्रीक, जर्मन और अन्य यूरोपीय भाषाओं को जिन्हें दक्षिण-पश्चिम एशिया, यूरेशिया और यूरोप में बोला जाता है, इस 'इंडो युरोपिन' की वंशज मानते हैं। ये भाषाएँ आत्मीयता और समानता साझा करती हैं।

इनमें *ऋग्वेद* सबसे प्राचीन रचना है।

''*वेद*'' शब्द को संस्कृत में ''विद'' से लिया गया है जिसका भावार्थ है ''ज्ञान होना''।

''*वेदों*'' में प्रार्थनाओं और श्लोकों का संकलन है और इनकी रचना बहुत से कवियों तथा महाऋषियों के परिवारों ने देवताओं के सम्मान में की। इन चारों *वेदों* को ''संहिता'' भी माना जाता है क्योंकि उस समय की मौखिक परम्परा के प्रतीक हैं। चूँकि श्लोक का तात्पर्य था उसका पाठ करना, उसको कंठस्थ करना तथा मौखिक रूप से उसको स्थान्तरित कर देना, अतः जिस समय इनको संकलित किया गया उस समय इनको लिखा नहीं गया। इसी कारणवश किसी भी संहिता के रचना काल को पूर्ण निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक संहिता कई शताब्दियों के दौर में हुए संकलन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन चारों संहिताओं में वर्णित विषय-वस्तु के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि *ऋग्वेद* की रचना लगभग 1500 बी.सी.ई से 1000 बी.सी.ई के मध्य में हुई होगी।

ऋग्वैदिक संहिता में 1028 सूक्त हैं, जिन्हें असमान आकार की 10 पुस्तकों (*मण्डलों*) में विभाजित किया गया है। 2-7 तक की पुस्तकों को कालक्रम की दृष्टि से सबसे पहले का माना जाता है। और ये आरंभिक वैदिक काल से संबंधित है।

विद्वानों का मत है कि *ऋग्वेद* और ईरान के प्राचीनतम ग्रंथ *अवेस्ता* जो *ऋग्वेद* से भी पहले की रचना है, में समान भाषा का प्रयोग हुआ है। इन भाषाई समानताओं के आधार पर तथा कालक्रम में *अवेस्ता* को *ऋग्वेद* का अग्रगामी बताते हुए विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं –

1) इन दोनों ग्रंथों में वर्णित लोग एक समान बहु-भाषा समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका स्थानांतरण पश्चिम एशिया एवं ईरान से भारतीय उप-महाद्वीप की ओर हुआ। ये लोग ''आर्य'' कहलाये।

2) आर्यों का मूल स्थान एक ही था जहाँ से वे विभिन्न समूहों में यूरोप एवं पूर्व की ओर स्थानांतरित हुए।

तथापि, आर्यों के उत्पत्ति-स्थल के विषय में वाद-विवाद की वैधता अब समाप्त हो चुकी है क्योंकि समान जातीय पहचान की अवधारणा को गलत साबित किया गया है। परंतु एक समान भाषाओं की अवधारणा के आधार पर इतिहासकार आर्यों के स्थानांतरण के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और कुछ इतिहासकार इस पर विशेष ज़ोर देते हैं।

8.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य

पिछले 40 वर्षों में सिंधु व घग्घर नदियों के किनारे, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी राजस्थान में उत्खनन के द्वारा इन क्षेत्रों से हड़प्पा काल के बाद के उन्नत ताम्र पाषाण संस्कृति के अवशेषों को खोद निकाला गया है। इनका समय 1700 बी.सी.ई से 600 बी.सी.ई के मध्य का है। आपने पहले की इकाई में इस बारे में पढ़ा है। आपने देखा है कि इन ताम्र पाषाण संस्कृतियों को उत्तर हड़प्पा, ओ.सी.पी. (गेरु रंग के मृद्भांड), बी.आर.डब्ल्यू. (काले-और-लाल मृद्भांड) और पी.जी.डब्ल्यू. (चित्रित धूसर मृद्भांड) के नामों से (अपनी विशेषताओं के कारण) पुकारा जाता है।

तथापि, हमें यह याद रखना चाहिए कि मिट्टी के बर्तन (मृद्भांड) बनाने वाली शैली उस समय के लोगों की सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतीक नहीं थी। विभिन्न प्रकार के मृद्भांड निर्मित करने की शैलियों का अनिवार्यतः यह अर्थ कदाचित नहीं है कि इन बर्तनों का प्रयोग करने

वाले लोगों में भी अन्तर था। विश्लेषण किसी सांस्कृतिक संग्रह के एक विशेष लक्षण को ही परिभाषित करता है, इससे अधिक नहीं। कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य और उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तरी भारत में प्राप्त इन संस्कृतियों के संकेतों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

8.3 आर्यों का आक्रमण : कल्पित या वास्तविक?

क्या आर्यों का आक्रमण एक कल्पना मात्र थी या वास्तविकता? अब हमें यह देखना है कि किस सीमा तक पुरातात्विक साक्ष्य इस प्रश्न का उत्तर जानने में हमारी मदद कर सकते हैं।

पुरातात्विक विद्वानों ने बहुत सी उत्तर-हड़प्पा संस्कृतियों को आर्यों से जोड़ने का प्रयास किया है। चित्रित धूसर बर्तनों की संस्कृति को बार-बार आर्यों की शिल्पकारिता के साथ जोड़ा जाता है और इसको लगभग 900 बी.सी.ई. से 500 बी.सी.ई. के मध्य का माना गया। उनका तर्क उन अनुमानों पर आधारित है जिनको इतिहासकारों ने साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण के द्वारा निकाला था। तथापि, *ऋग्वेद* एवं *अवेस्ता* के बीच पाई जाने वाली भाषागत समानता का अनुसरण करते हुए पुरातत्वविदों ने, बर्तनों की किस्म, मिट्टी के बर्तनों पर चित्रण और तांबे आदि की वस्तुओं के बीच समानता दिखा कर उत्तर-हड़प्पा तथा पश्चिम एशिया/ईरानी ताम्र पाषाण संग्रह के मध्य समानता के चिन्ह खोजने की चेष्टा की है। इस प्रकार की अतिरंजित समानताओं ने इतिहासकारों के इस निष्कर्ष को बढ़ावा दिया है कि आर्य उन लोगों का समूह था जिन्होंने पश्चिम एशिया से भारत की ओर स्थानांतरण किया था। इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक दूसरे का पूरक बना कर स्थानांतरण के सिद्धांत की वैधता को पुष्ट किया गया।

ऋग्वेद तथा *अवेस्ता* के मध्य भाषागत समानताओं को लेकर कोई विवाद नहीं है। परंतु इस प्रकार की समानता ये नहीं दर्शाती कि विशाल स्तर पर लोग भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरित हुए। दूसरा ये कि भारत में ताम्र पाषाण शिल्प अवशेषों और पश्चिम एशिया में पाए गए शिल्प अवशेषों के बीच समानता कम ही पायी जाती है। यह भी विशाल स्तर पर लोगों के स्थानांतरण को नहीं दिखाता। ''आर्य'' अवधारणा की जैसा कि पहले कहा गया, मृद्भांड की किसी एक शैली के आधार पर पहचान नहीं की जा सकती और न ही इसका नस्लीय या जातीय आधार पर अब कोई महत्त्व है। ''आर्य'' एक खोखली अवधारणा है जो लोगों के बीच भाषागत समानता से संबंधित है।

इस विषय में आपको उत्खनन द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित निष्कर्षों का ध्यान रखना चाहिए।

1) प्रारम्भिक विद्वानों का विश्वास था कि इंडो-आर्य हड़प्पा सभ्यता के पतन का कारण थे, उन्होंने हड़प्पा के नगरों तथा शहरों का सर्वनाश किया। उन्होंने *ऋग्वेद* के उन श्लोकों को उद्धृत किया जिसमें इंद्र को किलों के निवासी नष्ट करने वाला बताया गया है। लेकिन पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते कि हड़प्पा कालीन सभ्यता का पतन इसलिए हुआ कि उस पर किसी बाहरी शक्ति ने कोई व्यापक आक्रमण किया था।

2) चित्रित धूसर मृद्भांड (पी.जी.डब्ल्यू) के प्रयोग करने वालों को आर्यों से जोड़ने के प्रयासों को पुरातात्विक साक्ष्य भी प्रमाणित नहीं करते। अगर मृद्भांड संस्कृतियाँ आर्यों के विषय में सूचित करती हैं तो उनके आक्रमण की अवधारणा को मस्तिष्क में रखते

हुए ये मृद्भांड बहावलपुर तथा पंजाब में भी मिलने चाहिए क्योंकि आर्यों के स्थानांतरण का रास्ता भी यही था। लेकिन, हमें यह एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र जैसे हरियाणा, ऊपरी गंगा के थाल और पूर्वी राजस्थान में प्राप्त होते हैं।

3) दोनों संस्कृतियों में समय के अंतर के विषय में भी सोचा गया जिसका तात्पर्य यह लगाया गया कि उत्तर हड़प्पा और हड़प्पा काल के बाद की ताम्र पाषाण कालीन सभ्यता के बीच एक अंतराल था। भगवानपुरा, दधेरी, हरियाणा और मंडा में की गई हाल की खुदाइयों से पाया गया कि उत्तर हड़प्पा और चित्रित धूसर मृदभांड (पी.जी. डब्ल्यू.) की संस्कृति के अवशेषों को बिना किसी रुकावट के एक साथ पाया गया है। इस प्रकार ''आक्रमण'' की अवधारणा को भी खुदाइयों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।

1750 बी.सी.ई. के बाद नगर एवं शहर, ऐसे औज़ार जैसे मोहरें, तोल-माप के साधन आदि जो व्यापार एवं नगरीकरण से संबंधित थे, लुप्त हो गये। प्रारम्भिक काल का ग्रामीण ढांचा द्वितीय तथा पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. में भी स्थिर बना रहा। पुरातात्विक खोजों के द्वारा खोजी गई उत्तर हड़प्पा काल के बाद की वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन, धातु के औज़ार तथा अन्य वस्तुएँ वास्तव में भारत की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति की क्षेत्रीय विभिन्नता दिखाती हैं।

इस प्रकार दूसरी और पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. के पुरातात्विक प्रमाणों ने वैदिक आर्यों के विषय में आजकल प्रचलित दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रथमतः पुरातत्व में ऐसा कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो कि 1500 बी.सी.ई. के आस-पास मध्य या पश्चिमी एशिया से भारतीय उपमहाद्वीप में **बड़े पैमाने पर** लोगों का स्थानान्तरण हुआ। दूसरा, इस बात का कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिला है कि आर्यों ने हड़प्पा की सभ्यता का विनाश करके एक नयी भारतीय सभ्यता की स्थापना की। वस्तुतः यद्यपि *ऋग्वेद* में बार-बार विभिन्न दलों के बीच संघर्ष और लड़ाइयों का वर्णन आया है, किंतु आर्यों और अनार्यों तथा उनकी संस्कृतियों के बीच कथित मुठभेड़ों का कोई भी विवरण पुरातत्व में नही मिलता। फिर भी चूँकि *ऋग्वेद* धार्मिक श्लोकों का प्राचीनतम उपलब्ध संग्रह है अतः इसका ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन श्लोकों (स्तोत्रों) से उस प्रारम्भिक समाज के विभिन्न पहलुओं के विषय में ऐसी जानकारियाँ मिलती हैं जो पुरातात्विक प्रमाणों से नहीं मिल सकती। उनसे हमें उस समय की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, राजपरम्परा और राजनैतिक संगठन, धार्मिक और ब्रह्माण्डिकीय विश्वासों आदि के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें से अधिकांश जानकारी परिवर्तिकालीन भारतीय समाज को समझने में सहायक सिद्ध होती है। अतः अब हम यह देखेंगे कि *ऋग्वेद* से प्रारम्भिक वैदिक समाज के बारे में क्या जानकारी मिलती है।

8.4 अर्थव्यवस्था

प्रारंभिक वैदिक समाज पशुपालन पर आधारित था, पशुओं को पालना ही मुख्य पेशा था। एक चरवाही समाज कृषि उत्पादों की तुलना में पशुधन पर अधिक निर्भर करता है। पशु चराने के काम आजीविका का साधन है और इसको वे लोग अपनाते हैं जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ पर बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी का कार्य सम्भव नहीं जो पर्यावरण संबंधी और कुछ सीमा तक सांस्कृतिक विवशताओं के कारण है।

प्रारम्भिक वैदिक काल में पशुपालन के महत्त्व का *ऋग्वेद* सूक्तों में काफ़ी बड़े स्तर पर वर्णन हुआ है। *ऋग्वेद* में बहुत सी भाषागत अभिव्यक्तियाँ गाय (गौ) से जुड़ी हैं। गोधन सम्पन्नता

के प्रधान प्रतीक थे और एक सम्पन्न आदमी जो गोधन का स्वामी होता था ''*गोमत*'' कहलाता था। इस काल में संघर्ष एवं लड़ाईयों के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था, वे थे *गविष्टि, गवेष्ना, गवयत* आदि। पहले शब्द का अर्थ है गाय की खोज करना और ये शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि गोधन पर अधिकार समुदायों के मध्य असंतोष का आधार होता था तथा कभी-कभी इसको लेकर कबीलों के बीच संघर्ष एवं युद्ध छिड़ जाते थे। *ऋग्वेद* में *पणिस* शब्द का प्रयोग हुआ है, जो वैदिक जनों के शत्रु थे तथा वे आर्यों के धन विशेषकर गायों को पर्वतों एवं जंगलों में छिपा लेते थे। इन पशुओं को छुड़ाने के लिए वैदिक देवता इंद्र की पूजा की जाती थी। यह संदर्भ यह भी बताता है कि पशुओं का अपहरण सामान्य बात थी। राजा या मुखिया को ''*गोपति*' कहा जाता था, जो गायों की रक्षा करता था। *ऋग्वेद* में ''*गोधूली*' शब्द का प्रयोग समय को मापने के लिए हुआ है, दूरी को *गवयुती* नाम दिया गया है, पुत्री को *दुहिता* कहा गया है क्योंकि वह दूध दूहन का काम करती थी।

ये सारे शब्द गौ से बने हुए हैं और इससे लगता है कि *ऋग्वेद* कालीन जीवन में महत्त्वपूर्ण कार्य गौ-पालन था। चारागाह, गौशाला, दुग्ध उत्पादन और पालतू जानवर के साहित्यिक संदर्भ श्लोकों एवं प्रार्थनाओं में पाये गये हैं।

ऋग्वेद में पशुपालन से संबंधित अनगिनत भाषागत साक्ष्यों की तुलना में कृषि गतिविधियों से जुड़े संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं। अधिकतर कृषि संदर्भ बाद के काल से संबंधित हैं। ''यव'' या जौ के अतिरिक्त अन्य किसी अनाज का वर्णन नहीं किया गया है। प्रारंभिक वैदिक काल के लोग लौह तकनीकी का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि उनको तांबे की जानकारी थी, परन्तु ये औज़ार लोहे के औज़ार की तुलना में कम उपयोगी थे। पत्थर के औज़ारों (कुल्हाड़ी) का प्रयोग किया जाता था और इसका वृतांत *ऋग्वेद* में हुआ है। आग का प्रयोग जंगल जलाने के लिए किया जा रहा था और झूम खेती का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इस क्षेत्र में वर्षा कम होती तथा *ऋग्वेद* में वर्णित नदियाँ सतलुज, सिंधु, घग्घर और रावी आदि के बहाव में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता रहता था। उच्च स्तर की सिंचाई प्रणाली के बिना, जिसका विकास इस काल में नहीं हुआ था, नदियो के किनारे की कछारी (जलोढ़) भूमि की सिंचाई स्थायी तौर पर नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार ग्रंथों में वर्णित हंसिया, कुदाल और कुल्हाड़ी का प्रयोग शायद जंगलों को काटकर साफ करने या झूम खेती के लिए किया गया। पशुचारण एवं परिवर्तित खेती के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग खानाबदोश या अर्ध-खानाबदोश की स्थिति में पशु झुंडों को लेकर कुछ निश्चित समय के लिए अपने पशुओं को चराने के लिए घूमते थे। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन नहीं बिता रहे थे। आबादी के गतिशील चरित्र के बारे में, ''*विश*' शब्द से भी समझा जा सकता है जिसका तात्पर्य बस्ती था। *पुनर* (विश), *उपा* (विश) और *प्रा* (विश) जैसे प्रत्ययों के लगातार प्रयोगों से बस्तियों के उपविभाजन का बोध होता है और जिनका तात्पर्य है पास बसना (एक बस्ती के), पुनः प्रवेश करना (एक बस्ती में) या वापस आना (एक बस्ती को)।

भेंट विनिमय एवं पुनर्वितरण की समाज में महत्त्वपूर्ण आर्थिक भूमिका थी। कबीलाई-संघर्ष के कारण पराजित या अधीन समूहों द्वारा विजित सरदारों को बलि के रूप में नज़राना या अदायगी देनी पड़ती थी। विजयी कबीले के अन्य सदस्यों को युद्ध में बलपूर्वक प्राप्त किये गये एवं लूट-पाट के सामान का *भाग* या हिस्सा मिलता था। उत्सव के अवसरों पर कबीले का मुखिया अपने कबीले के सदस्यों को भोज कराता था तथा उनको उपहार देता था। इसका आयोजन सम्मान प्राप्त करने के लिए किया जाता था।

इस काल में व्यापार एवं व्यवसाय की हालत कमज़ोर थी। भू-स्वामित्व के आधार पर व्यक्तिगत संपत्ति का कोई सिद्धांत नहीं था।

बोध प्रश्न 1

1) प्रारंभिक वैदिक लोगों के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए मुख्य स्रोतों की चर्चा करें।

....

....

....

....

....

2) ऋग्वैदिक लोगों की अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं क्या थीं?

....

....

....

....

....

8.5 समाज

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई समाज था तथा वह जातीय एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित था। समाज जाति के आधार पर विभाजित नहीं था और विभिन्न व्यावसायिक गुट अर्थात् मुखिया, पुरोहित, कारीगर आदि एक ही जन समुदाय के हिस्से थे। कबीले के लिए *'जन'* शब्द का इस्तेमाल किया जाता था और *ऋग्वेद* में विभिन्न कबीलों का उल्लेख है। कबीलों में पारस्परिक संघर्ष सामान्य थे, जैसे *''दशराज युद्ध''* का वर्णन *ऋग्वेद* में हुआ है और इसी वर्णन से हमें कुछ कबीलों के नाम प्राप्त होते हैं जैसे भरत, पुरु, यदु, द्रहयु, अनू और तुरवासू। ये कबीलों के युद्ध जैसे कि पहले भी कहा गया है पशुओं के अपरहय एवं पशुओं की चोरी को लेकर होते रहते थे। कबीले का मुखिया *''राजा''* या *''गोपति''* होता था। वह युद्ध में नेता तथा कबीले का रक्षक था। उसका पद अन्य व्यावसायिक समूहों की भांति ही पैतृक नहीं था बल्कि उसका जन के सदस्यों में से चुनाव होना था। (योद्धा को *'राजन्य'* कहा जाता था)। *विश* एक गाँव या ग्राम में बस जाते थे। *कुल* या परिवार समाज की प्राथमिक इकाई था और *''कुलप''* अर्थात् परिवार का सबसे बड़ा पुरुष परिवार का मुखिया था जो परिवार की रक्षा करता था।

कबीला (जन), कबीलाई इकाई (विश), गाँव (ग्राम), परिवार (कुल), परिवार का मुखिया (कुलप)।

समाज पितृसत्तात्मक था। पुत्र की प्राप्ति लोगों की सामान्य इच्छा थी। पुरुष को महत्त्व दिया जाता था और इसका पता उन श्लोकों से लगता है जिनको पुत्र प्राप्ति के लिए लगातार प्रार्थना में प्रयोग किया जाता था।

यद्यपि पूरा समाज पितृसत्तात्मक था, फिर भी समाज में महिलाओं का भी काफ़ी महत्त्व था। वे शिक्षित थीं और वे सभाओं में भी भाग लेती थीं। कुछ ऐसी महिलाओं के भी दृष्टांत मिले हैं जिन्होंने श्लोकों का संकलन किया। उनको अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार था और वे देर से विवाह कर सकती थीं। इन सबके बावजूद महिलाओं को पिताओं, भ्राताओं

और पतियों पर सदैव निर्भर रहना पड़ता था। शिक्षा का मौखिक रूप से आदान-प्रदान किया जाता था, परंतु शिक्षा की परम्परा इस काल में अधिक लोकप्रिय नहीं थी।

ऋग्वेद के रचनाकारों में स्वयं को अन्य मानव समुदायों, जिन्हें उन्होंने *दास* और *दस्यू* कहा, से पृथक् रखा। *दास* शब्द को ऋग्वैद में अलग संस्कृति के दूसरे व्यक्ति को निरूपित करने के लिए प्रयोग किया गया है। *दासों* को काला, मोटे होठों वाला, चपटी नाक वाला, लिंग पूजक और अशिष्ट भाषा वाला कहकर वर्णन किया गया है। *ऋग्वेद* में उन्हें अनुष्ठानों का पालन नहीं करने के लिए व एक प्रजनन पंथ का अनुसरण करने के लिए धिक्कारा गया है। वे सुरक्षित दीवारें बना कर रहते थे और प्रचुर पशुधन के स्वामी थे। एक अन्य वर्ग *पणिस्* के विषय में जानकारी मिलती है जो धन और पशुओं के स्वामी थे। कालांतर में *पाणि* शब्द व्यापारियों और धन संपत्ति से जुड़ गया। इन समुदायों में आपसी झगड़े और मैत्रियाँ होती रहती थी और उन्हें विभिन्न जातियों या भाषाई वर्गों के रूप में नहीं बांटा जा सकता। उदाहरणतः *ऋग्वेद* का सबसे प्रमुख नेता सुदास था जिसने ''10 राजाओं'' की लड़ाई में भरत कुल का नेतृत्व किया था। उसके नाम के अंत में प्रयुक्त *दास* शब्द से लगता है कि उसका *दासों* से कुछ संबंध था। एक ही क्षेत्र में कई समुदायों की उपस्थिति के कारण ही सम्भवतः *वर्ण* व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

विभिन्न व्यवसायिक समूहों जैसे कि कपड़ा बुनने वाले, लोहार, बढ़ई, चर्मकार, रथ बनाने वाले, पुजारी आदि का वर्णन हुआ है। सारथी का समाज में विशेष स्थान था। *ऋग्वेद* में भिखारियों, मजदूरी पर काम करने वालों या मजदूरी का कोई दृष्टांत नहीं मिलता। परन्तु समाज में आर्थिक असमानता थी और हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनके अनुसार कुछ धनी लोग रथों, पालतू पशुओं (गायों-बैलों) आदि के स्वामी थे और इन वस्तुओं को भेंट या उपहार में देते थे।

8.6 राजनैतिक व्यवस्था

कबीलाई राज्य व्यवस्था पूर्णतः समानतावादी नहीं थी। *ऋग्वेद* में दोहरा सामाजिक विभाजन मिलता है, जिसको दो वंशीय समूहों के रूप में देखा गया है – प्रथम *''राजन्य''* या वे जो युद्ध करते थे तथा जिन्होंने उच्चवंशीय परम्परा प्राप्त की, और शेष कबीले के साधारण सदस्य या *विश* जिन्होंने छोटी वंशीय परम्परा प्राप्त की। यद्यपि सामाजिक क्रम में किसी गुट ने विशिष्ट स्थान नहीं पाया था, परंतु लगातार कबीलों के पारस्परिक संघर्षों एवं युद्धों ने सामाजिक विभाजन की रचना की। चारागाहों, पशुओं की बढ़ती आवश्यकता और लोगों तथा बस्तियों की सुरक्षा आदि के कारण आंतरिक एवं बाह्य कबीलाई संघर्षों में वृद्धि हुई। युद्ध में योद्धासमूह की सहायता के लिए ''कबीले'' विशाल स्तर पर यज्ञ या बलि का आयोजन करते थे। इन यज्ञों में पुजारी या पुरोहित जनसमुदाय तथा देवताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। वह देवताओं की स्तुति करता था जिससे कि देवताओं का आशीर्वाद कबीले के मुखिया को युद्धों में सफलता पाने के लिए मिल जाये। प्रारम्भ में, सारा जन समुदाय इन यज्ञों में समानता के आधार पर भागीदारी करता था। बड़े स्तर पर इन यज्ञों के समय धन, खाने आदि का वितरण किया जाता और जन समुदाय के प्रत्येक सदस्य को बराबर हिस्सा मिलता था। लेकिन संघर्षों एवं युद्धों में वृद्धि होने के कारण यज्ञ या बलि का महत्त्व बढ़ गया और पुरोहित ने समाज में एक विशेष दर्जा हासिल कर लिया। इस काल के अंतिम भाग में, वे राजाओं या मुखियाओं से प्राप्त होने वाले उपहारों का बड़ा हिस्सा पाने लगे, और इस प्रकार *जन* के अन्य सदस्यों की तुलना में उनको विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

युद्ध आदि होने के कारण राजा के पद का भी विशेष महत्त्व हो गया और उच्च तथा छोटी वंशीय परम्पराओं के बीच विभाजन अधिक स्पष्ट होने लगा। ये राजनीतिक असमानताएँ किस समय दिखायी पड़ी इसको स्पष्ट रूप से बता पाना कठिन है परंतु हमें याद रखना चाहिए कि *ऋग्वेद* के 10वें सर्ग में ''पुरुष सूक्त'' का वर्णन है और उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में हमें उन उच्च राजन्य समूहों के वर्णन मिलते हैं, जो क्षत्रिय का स्तर ग्रहण कर रहे थे तथा जो स्वयं में एक अलग जाति थी। ये परिवर्तन 1000 बी.सी.ई. के बाद हुए। इसका तात्पर्य यह कदाचित नहीं है कि जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं वह अपरिवर्तनीय था, वास्तव में यह परिवर्तन धीमी गति से हो रहा था लेकिन यह एक मुश्किल सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति ''उत्तर वैदिक काल'' में हुई।

ऋग्वेद में कबीलाई सभाओं के लिए *गण, विधाता, सभा* और *समिति* जैसे शब्दों का वर्णन है। यह निश्चित नहीं है कि इनकी कार्यप्रणाली वास्तव में इस काल में क्या थी। ''*सभा*'' कबीले के चुनिंदा सदस्यों की परिषद थी, इसलिए वह विशेष थी। ''समिति'' सम्पूर्ण कबीले की परिषद होती होगी। *विधाता* वह सभा थी, जिसमें अन्य वस्तुओं के अलावा छापे में प्राप्त की जाने वाली लूट का वितरण किया जाता था। इन सभाओं का कार्य सरकारी एवं प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करना था और यही अपने जन समुदाय के किसी एक सदस्य को राजा निर्वाचित करने का भी कार्य करती थी। इस प्रकार वे योद्धाओं की शक्ति पर नियंत्रण रखते थे। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं कि यद्यपि हम प्रारम्भिक वैदिक व्यवस्था में अच्छी प्रकार से परिभाषित राजनैतिक श्रेणीबद्धता नहीं पाते हैं फिर भी परिवर्तनों के इस काल में सामाजिक राजनैतिक श्रेणीबद्धता को जन्म दिया और जो ''उत्तर वैदिक काल'' में जातीय व्यवस्था के रूप में परिलक्षित हुई। आरंभिक वैदिक कालीन समाज कबीलाई मूल्यों एवं नियमों से शासित होता था जिसके कारण मोटे तौर पर वर्ग विभेदीकरण नहीं हुआ।

8.7 धर्म

वैदिक लोगों के धार्मिक विचार *ऋग्वेद* के श्लोकों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। वे चतुर्दिक प्राकृतिक शक्तियों (जैसे वायु, जल, वर्षा, बादल, आग आदि) जिन पर वे नियंत्रण नहीं कर सकते थे और उन पर दैवी शक्ति का आरोपण करके, मानव के रूपों में, जिनमें अधिकतर पुर्ल्लिंग थे, उपासना करते थे। बहुत कम देवियों की अराधना होती थी। इस तरह से धर्म पितृसत्तात्मक समाज को दर्शाता है और वह प्रारम्भिक जीववाद था।

इंद्र शक्ति का देवता था और उसकी उपासना शत्रुओं का नाश करने के लिए होती थी। वह बादलों का देवता था और वर्षा करने वाला था तथा उससे समय-समय पर वर्षा के लिए कहा जाता था। उसको पराजित नहीं किया जा सकता था। बादल एवं वर्षा (प्राकृतिक नियति) शक्ति से संबंधित थे जिसको पुरुष के रूप में मानवीयकरण किया गया तथा जिसका प्रतिनिधित्व इंद्र देवता करता था। गण का मुखिया जो युद्ध में सबसे आगे रहता था उसका प्रतिनिधित्व भी इंद्र के चरित्र में मिलता है। अग्नि आग का देवता था और इंद्र के बाद उसका महत्त्व था। *ऋग्वेद* के कुछ सुन्दर श्लोक अग्नि को समर्पित हैं। उसे कई घरेलु रस्मों जैसे शादी की उपरिकेंद्र माना जाता था। पाँच तत्वों में से वह सबसे शुद्ध था। उसको पृथ्वी एवं स्वर्ग के बीच मध्यस्थ माना जाता था। अर्थात देवताओं और मनुष्यों के बीच। वह परिवार के चूल्हे का अधिकारी था, और उसकी उपस्थिति में ही विवाह सम्पन्न होते थे। अग्नि का पूजन चूल्हे को प्रतीकात्मक महत्त्व देता था जिसे गृहस्थ का सबसे आदरणीय केंद्र माना जाता था। आग गंदगी एवं जीवाणुओं को नष्ट करती है इसलिए अग्नि को पवित्र माना जाता था। प्रारम्भिक समाज में अग्नि के महत्त्व को यज्ञ या बलि से भी

संबंधित किया जा सकता है। जो आहुतियाँ अग्नि को समर्पित की जाती थीं उनसे ऐसा माना गया कि वे धुएँ के रूप में देवताओं तक पहुँचायी जाती थीं।

वरुण को जल का देवता माना जाता था और वह विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था का रक्षक था। यम मृत्यु का देवता था और उसका प्रारम्भिक वैदिक धर्म में विशेष महत्त्व था। दूसरे अन्य बहुत से देवता थे जैसे सूर्य, सोम (जो एक पेय भी था), सावित्री, रूद्र आदि और अनेक प्रकार के दिव्य देहधारी देवता थे जैसे गंधर्व, अप्सरा, मारूत तथा जिनको सम्बोधित करते हुए *ऋग्वेद* में प्रार्थना एवं श्लोक लिखे गये हैं।

वैदिक धर्म बलि देय था। बलि या यज्ञों को निम्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिए किया जाता था :

- देवताओं की उपासना करने,
- मनोरथ पूरा करने के लिए, युद्ध में विजय,
- पशुओं, पुत्रों आदि की प्राप्ति के लिए।

हमें कुछ ऐसे श्लोक मिले हैं जिनको बलि के औज़ारों में शक्ति संचयन के लिए समर्पित किया गया जैसे कि बलि वेदी, सोम के पोधे को पीसने वाले पत्थरों, ओखली, युद्ध के हथियारों, एवं नगाड़ों आदि। श्लोकों एवं प्रार्थनाओं को इन बलि यज्ञों के अवसरों पर गाया जाता था और सामान्यतः पुरोहित ही इन यज्ञों को सम्पन्न करते थे। प्रारम्भिक वैदिक काल में बलि यज्ञों का बहुत महत्त्व हो गया जिसके परिणामस्वरूप, पुरोहितों का महत्त्व भी बढ़ने लगा। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित एवं पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी वृद्धि हुई। बलिदान वाले क्षेत्र में बहुत सी वस्तुओं का उचित स्थिति में स्थापित करने के लिए प्रारम्भिक गणित की आवश्यकता गणना करने के लिए पड़ती थी। बलिदान बार-बार होने के कारण पशुओं के शरीर का ज्ञान भी बढ़ा। वैदिक लोगों का विश्वास था कि जगत् का उद्‌भव एक विशाल ब्रह्माण्डी यज्ञ से हुआ और यज्ञों के समुचित सम्पादन से ही उसका प्रतिपालन हो रहा है। धर्म मायावी-अनुष्ठान पर आधारित नहीं था बल्कि इसके द्वारा बलिदान व श्लोकों के माध्यम से देवताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करने पर बल दिया गया था। आत्मिक उत्थान करने के लिए देवताओं की उपासना नहीं की जाती थी और न ही निराकार दार्शनिक अवधारणा के लिए। अपितु इनकी उपासना भौतिक उपलब्धियों के हेतु की जाती थी।

बलि पर आधारित धर्म पशु-पालक (चरवाहों) लोगों का धर्म है। इस समाज में पशु की बलि सामान्य बात है। जब पशु बूढ़ा हो जाए, जब वह न दूध दे सकता है और न मांस, न प्रजनन के लिए ही उपयुक्त रह जाता है, अर्थात् जो पशु आर्थिक लाभ के नहीं होते उनको मारकर उनके मालिकों का बोझ हल्का कर दिया जाता है। इस तरह से पशुबलि बूढ़े जानवरों को नष्ट करने का एक तरीका है और इसका समाज में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। लेकिन कृषि प्रधान समाज में, पुराने पशुओं का उपयोग खेती-बाड़ी में किया जाता है और वे हल आदि खींचने के काम आते हैं तथा इसीलिए खेती-बाड़ी वाले समुदाय जानवरों के नष्ट होने के काम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार वैदिक धर्म पितृकसत्तात्मक, पशुपालक समाज को उजागर करता है और यह दृष्टिकोण में भौतिकतावादी था।

बोध प्रश्न 2

1) प्रारम्भिक वैदिक समाज की पांच महत्वपूर्ण विशेषताओं पर चर्चा करें। पांच वाक्यों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) प्रारम्भिक वैदिक राजव्यवस्था में राजन की स्थिति क्या थी?

....

....

....

....

....

3) प्रारम्भिक वैदिक लोगों के धर्म के स्वरूप पर चर्चा करें।

....

....

....

....

....

4) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाओ।

क) अवेस्ता सबसे पुराना ईरानी ग्रन्थ है। ( )

ख) पुरोहित या पुजारी का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था। ( )

ग) *''सभा''* और *''समिति''* को राजा के चुनाव में कोई अधिकार नहीं था। ( )

घ) प्रारम्भिक वैदिक समाज में, शक्ति का देवता, इंद्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। ( )

ड़) धर्म मायावी अनुष्ठान के सिद्धांत पर आधारित था। ( )

8.8 सारांश

आपने इस इकाई में उन साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उत्तर वैदिक समाज के पुनर्निर्माण में हमारी सहायता करते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के प्रकाश में ''आर्यों'' के वृहत पैमाने पर स्थानांतरण की अवधारणा को स्वीकार करना कठिन है। प्रारम्भिक वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से पशुपालन की थी और गाय संपत्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक थी। प्रारंभिक वैदिक लोगों के जीवन में खेती का स्थान गौण था। प्रारंभिक वैदिक समाज कबीलाई और मुख्यतः समानतावादी था। कुटुम्ब और परिवार के संबंधों ने

समाज का आधार निर्मित किया था और परिवार समाज की आधारभूत इकाई था। व्यवसाय पर आधारित सामाजिक विभाजन प्रारम्भ हो चुका था परंतु उस समय जातिगत विभाजन नहीं था। प्रारंभिक राजनैतिक व्यवस्था में *जन* के मुखिया या राजा और पुजारी या पुरोहित के महत्त्वपूर्ण स्थान थे। अनेकों गण सभाओं में से *''सभा''* व *''समिति''* प्रशासन में विशेष योगदान करती थीं। यद्यपि प्रारंभिक वैदिक व्यवस्था में स्पष्ट रूप से परिभाषित कोई राजनैतिक पदानुक्रम नहीं था फिर भी कबीले की राजनैतिक व्यवस्था पूर्णतः समतावादी नहीं थी। प्रारम्भिक वैदिक लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों जैसे वायु, जल, वर्षा आदि को मूलरूप दिया और उनकी देवता की तरह पूजा को। वे देवता की उपासना किसी अमूर्त दार्शनिक अवधारणा के कारण नहीं बल्कि भौतिक लाभों के लिए करते थे। वैदिक धर्म में बलिदान या यज्ञ का महत्त्व बढ़ रहा था। यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि यह समाज स्थिर नहीं बल्कि गतिशील था। इन पाँच सौ वर्षों के दौरान (1500 बी.सी.ई से 1000 बी.सी.ई) समाज का लगातार विकास हो रहा था और आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नये-नये तत्व सामाजिक संरचना को रूपांतरित कर रहे थे।

8.9 शब्दावली

पुरावशेष (artifact) : मानव द्वारा निर्मित वस्तुएँ जैसे पुरातात्विक रुचि का कोई मामूली औज़ार या हथियार।

कुटुम्ब : कबीलाई समुदायों में पाया जाने वाला बड़ा परिवार समूह।

नातेदारी : खून का संबंध।

जीववाद (Animism) : आत्मा के लिए प्राकृतिक वस्तुओं और क्रियाओं को श्रेय देना।

खानाबदोश : ऐसे कबीले का सदस्य जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकता हो तथा जिसका कोई स्थाई घर न हो।

पितृसत्तात्मक : पुरुष प्रधान परिवार या कबीला।

अर्ध-स्थायीत्व : ऐसे लोग जो स्थायी रूप से एक स्थान पर न बसे हों और दूसरी नयी बस्ती की खोज में घूमते हों।

परिवर्ती खेती : एक भूमि का कुछ समय के लिए खेती-बाड़ी हेतु प्रयोग करके इसको छोड़ देना तथा नयी भूमि का प्रयोग करना।

स्तर विन्यास : भूमि की वे परतें जिनको खुदाई करके निकाला गया हो। इन परतों का पता लगाने का आधार अलग-अलग मिट्टी के प्रकारों या खुदाई में पाए जाने वाले विभिन्न पुरावशेषों में हो सकता है।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 8.2
2) देखें भाग 8.4

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिए कि यह एक कबीलाई समाज था, समाज पितृसत्तात्मक था, परिवार समाज की मूल इकाई थी, जाति विभाजन वहां पर नहीं था। देखिए भाग 8.5।

2) आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिए कि राजा कबीले का मुखिया था, बार-बार होने वाले युद्धों ने उसको महत्त्वपूर्ण बनाया, वह कबीले का रक्षक था, उसका पद सदैव पैतृक नहीं होता था, आदि। देखिए भाग 8.6।

3) वैदिक लोग अनेक प्राकृतिक शक्तियों की उपासना देवता के रूप में करते थे, बलिदान पर बल देते थे परंतु मायावी-अनुष्ठान के सिद्धांत पर नहीं, धर्म भौतिक उपलब्धियों पर आधारित था आदि। देखिए भाग 8.7।

3) (क) ✓ (ख) × (ग) × (घ) ✓ (ड़) ×

8.11 संदर्भ ग्रंथ

बैशम, ऐ. एल. (1986). *द वंडर दैट वॉस इंडिया.* नई दिल्ली.

कोशाम्बी, डी. डी. (1987). *द कल्चर एंड सिविलाईजेशन ऑफ ऐशियंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आऊटलाईन.* नई दिल्ली.

थापर, रोमिला (2002). *द पेन्गुईन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300.* नई दिल्ली : पेन्गुईन बुक्स.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY